मौर्यकालीन सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था का अध्ययन

[1]उमाशंकर, [2]डॉ. तपेन्द्र सिंह शेखावत

[1]शोधार्थी, [2]शोध निर्देशक
श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टिबड़ेवाला विश्वविद्यालय
विद्यानगरी, झुंझुनूं, राजस्थान

लेख सार :

देश के राजनैतिक–आर्थिक विकास के लिए यह अध्ययन अति आवश्यक हैं। किसी सामाज्य/देश/राज्य के विकास के लिए समाज व धर्म को मुख्य धारा में लाना मुख्य चिंता रही है। मौर्यकालीन नेतृत्व भारत के विकास के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। महिलाओं का राजनीतिक सशक्तीकरण, जीवन के सभी क्षेत्रों में सतत विकास, पारदर्शी तथा उत्तरदायी सरकार एवं प्रशासन के लिए आवश्यक है। समान भागीदारी भारतीय समाज एवं देश के संतुलित विकास को बढ़ावा देगी जिससे भारत को मजबूती मिलेगी, क्योंकि सभी स्तरों पर निर्णय एवं नीति–निर्माण तथा क्रियान्वयन के बिना समानता, सामाजिक न्याय एवं धार्मिक आदर्शों की प्राप्ति नहीं होगी। लचीली एवं प्रभावी रणनीतियों को अपनाने की आवश्यकता है। भारत के प्रति विदेशीयों एवं स्वयं भारतीयों की धारणा में बदलाव लाना जरूरी है। सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक क्षेत्र में मौर्यकालीन प्रशासन की प्रभावी भूमिका रही हैं। इसके लिए शिक्षा व धार्मिक उन्नति से समाजिक उत्थान के जरिए जागरूकता का प्रसार किया जाना है।

प्रस्तावना

मालिक (2013) ''मौर्यकालीन जन–जीवन'' शीर्षक पर अध्ययन किया और कहा कि यह मौर्यकालीन इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसकी रचना संस्कृत भाषा में की गयी थी। यह राजनीति एवं लाक प्रशासन पर लिखी पुस्तक है। बहु विवाह प्रचलित(केवल धनी लोगों में) सती प्रथा का प्रचलन नहीं था। जाति, समाज, का मूलाधार थी। जाति व्यवस्था का पालन अनिवार्य था। दास प्रथा प्रचलित नहीं थी। इन्होंने ''मौर्य कालीन जन–जीवन'' को समझ कर यह अर्थ निकाला कि सामाज का नेतृत्व निम्न कारको पर निर्भर करता है– आर्थिक स्थिति, परिवार की प्रतिष्ठा, सम्राट का व्यक्तित्व, शिक्षा व्यवस्था, अंतरगता एवं उसका प्रभाव आदि।**भाटिया (2014)**ने ''मौर्य साम्राज्य के दौरान आर्थिक स्थिति'' शीर्षक का अध्ययन किया और पाया कि मौर्य–युग में कृषि अधिकांश जनता के जीवन का आधार थी । भूमि राजा तथा कृषक दोनों के अधिकार में होती थी। कृषक युद्ध तथा अन्य राजकीय कर्तव्यों से मुक्त रहने के कारण अपना सारा समय खेतों में ही लगाते थे।

मौर्यकालीन सामाजिक व्यवस्था

मौर्य काल का सामाजिक जीवन कौटिल्य के अनुसार वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था। कौटिल्य ने वर्णाश्रम व्यवस्था के महत्व को स्पष्ट करते हुए इसकी रक्षा को राजा के कर्तव्य से जोड़ा, इन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के कार्यों को अलग–अलग निर्धारित किया। कौटिल्य ने शूद्रों को भी आर्य कहा। उसके अनुसार शूद्र का कार्य शिल्प, व्यापार, कृषि तथा पशुपालन भी हो सकता है। इन्हें दास बनाये जाने पर प्रतिबन्ध था। मौर्य काल में शिक्षक, यज्ञ सम्पन्न कराने वाले पुरोहित एवं वेद का पाठ करने वाले पुरोहितों को ''ब्रह्मदेव'' नामक भूमिदान में दी जाती थी।''अर्थशास्त्र'' में कुछ वर्णसंकर जातियों जैसे–अम्बष्ठ, निषाद, पारशव, रथकार, क्षत्ता, वैदेहक, मागध, सूत, पुल्कस, वेण, चाण्डाल व स्वपाक आदि का उल्लेख किया है। इनकी उत्पत्ति विभिन्न वर्गों के अनुलोम और प्रतिलोम विवाह से बताई जाती है। इनमें चाण्डाल को छोड़कर शेष सभी वर्णसंकर जातियाँ शूद्र जातियों में आती थीं। अशोक के शिलालेखों में दास और कर्मकार का उल्लेख मिलता है। ये भी शूद्र वर्ग के अन्तर्गत आते थे। वस्तुतः बुद्ध युग में पशुचारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ढल चुका था। इस काल में वाणिज्य और व्यापार का भी विकास हुआ था। परिणामस्वरूप एक व्यापारी वर्ग का उदय हुआ।

यह इस बात का द्योतक था कि ब्राह्मण का स्थान समाज में द्वितीयक था। किन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पुनः ब्राह्मणों को प्रतिष्ठित किया गया है। मेगस्थनीज ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था को सात जातियों में विभाजित किया है– (1) दार्शनिक (2) किसान (3) शिकारी एवं पशुपालक (4) शिल्पी एवं कारीगर (5) योद्धा (6) निरीक्षक एवं गुप्तचर (7) अमात्य एवं सभासद (पार्षदय सलाहकार)। इस दौरान अधिकतर लोगों का व्यवसाय कृषि था।

कौटिल्य द्वारा चारों वर्णों का व्यवसाय निर्धारित किया गया है। अर्थशास्त्र के अनुसार शूद्रों को शिल्पकला एवं सेवावृत्ति के अतिरिक्त कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य की अनुमति दी गई है। कोटिल्य के अनुसार चंडाल, स्वापक और म्लेच्छों को छोड़कर सबों को शूद्र माना गया है। एक वर्ण ऐसा भी था जिसकी स्थिति शूद्रों की तुलना में भी हीन थी। इस वर्ण को अन्तावसायी कहते थे, इसमें चण्डाल, स्वापक आदि थे। मौर्य युग में अनेक ऐसी जातियों का विकास हो चुका था जिनका आधार कोई विशेष शिल्प या पेशा था। उदाहरण के लिए तन्तुबाय (जुलाहा), रजकर (धोबी), सुवर्णकार (सोनार), चर्मकार (चमार), चर्मकार (चमार), कर्मार (लोहार) और कुट्टक (बढ़ई) आदि इसी प्रकार की जातियां थी। इन सबका समावेश शूद्र वर्ण में कर लिया गया और इसे आर्य जनता का अंग मान लिया गया। अर्थशास्त्र के अनुसार न्याय संहिता में भी वर्णभेद विद्यमान था।

मौर्यकालीनसमाजिक व्यवस्था में स्त्रियों की स्थिति

मौर्यकाल में स्त्रियाँ गुप्तचर का कार्य भी करती थीं। स्त्रियाँ सम्राट की अंगरक्षिका का कार्य भी करती थी। अर्थशास्त्र में ऐसी स्त्रियों के लिए असूर्यपश्या, अवरोधन तथा अंतःपुर शब्दों का प्रयोग किया गया है। मौर्यकाल में स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार प्राप्त था।

मौर्यकाल में स्त्रियों का स्थान अपेक्षाकृत संतोषजनक था। अर्थशास्त्र के अनुसार विवाह के लिए स्त्री की आयु 12 वर्ष तथा पुरुष की आयु 16 वर्ष होनी चाहिये। मौर्यकाल में दहेज प्रथा काफी प्रचलित थी। बौद्ध युग की तुलना में इस युग में स्त्रियों की स्थिति कुछ अच्छी हुई क्योंकि इस युग में स्त्रियों को पुनर्विवाह या विधवा विवाह एवं नियोग की अनुमति दे दी गई थी। किन्तु कुल मिलाकर स्त्रियों की दशा विशेष

अच्छी नहीं थी। मेगस्थनीज के अनुसार भारत में बहुपत्नीत्व की प्रथा प्रचलित थी। मौर्य युग में आठ प्रकार के विवाह प्रचलित थे। दहेज देकर विवाह की प्रथा उस काल में बहुत लोकप्रिय थी। नियार्कस के अनुसार भारतीय लोग दहेज लिए या दिए गए बिना विवाह नहीं करते थे। कौटिल्य के अनुसार पहले चार प्रकार के विवाह धर्मे होते थे– ब्रह्म, प्रजापत्य, आर्ष, दैवी। इसी के साथ ही ये विवाह पितृ प्रमाण भी होते थे। पितृ प्रमाण का अभिप्राय यह है की उनके लिए पिता की अनुमति (स्वीकृति) ही पर्याप्त है। पिछले 4 प्रकार के विवाहों के लिए माता–पिता दोनों की अनुमति आवश्यक थी। विवाह के संबंध में कौटिल्य का मत है कि सभी प्रकार के विवाह नियमानुकूल तथा स्वीकार्य हैं। पुनर्विवाह की प्रथा मौर्यकाल में प्रचलित थी। पुरुष और स्त्री दोनों को ही पुनर्विवाह का अधिकार प्राप्त था। कौटिल्य ने तलाक की अनुमति भी दी है किंतु पहले चार प्रकार के धर्म विवाहों में तलाक की अनुमति नहीं थी। पुनर्विवाह की व्यवस्था के बावजूद ऐसी विधवाओं का अस्तित्व था जो पुनर्विवाह न करके स्वतंत्र रूप से जीवन बिताया करती थीं। कौटिल्य ने ऐसी स्त्री को स्व ''छन्दवासिनी'' (स्वतंत्र रूप से रहने वाली) कहा है। संभवतः ऐसी स्त्रियाँ भी पुनर्विवाह न करके स्वतंत्र रूप से जीवन बिताना चाहती थीं जो धनी होती थीं। कौटिल्य ने इनके लिए ''आढ़यविधवा'' का प्रयोग किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ''परिव्राजिकाओं'' (सन्यासिनी) का भी उल्लेख किया गया है। जिन्हें समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त था। कौटिल्य ने इनके लिए ''कृत्सकारा'' शब्द का प्रयोग किया है। स्त्रियाँ प्रायः विभिन्न पेशे से दूर रहती थीं। केवल बुनाई के पेशे में ही स्त्रियों की भागीदारी अधिक थी। सम्भ्रान्त घर की स्त्रियाँ प्रायः घर के अन्दर ही रहती थीं और कौटिल्य ने ऐसी स्त्रियों को ''अनिष्कासिनी'' कहा है। सती–प्रथा प्रचलित नहीं थी। किन्तु जैसा कि यूनानी इतिहासकारों ने सिद्ध करने का प्रयास किया है कि सैनिकों की स्त्रियों में सती प्रथा का प्रचलन था। परन्तु, तत्कालीन ब्राह्मण बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों से इसकी पुष्टि नहीं होती। मौर्य काल में गणिकाओं या वेश्याओं का भी उल्लेख मिलता है। स्वतन्त्र रूप से वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियां ''रूपाजीवा'' कहलाती थीं। बहुत से गणिकाएं गुप्तचर विभाग में कार्य करती थी। गणिकाओं के कार्यों का निरक्षण गणिकाध्यक्ष करता था। इनसे राज्य की आय प्राप्त होती थी। राज्य गणिकाओं के प्रशिक्षण पर खर्च करता था। और इस प्रकार की गणिकाएँ राज्य के नियंत्रण में कार्य करती थीं। यदि कोई वेश्या मुक्त होना चाहती थी तो उसे राज्य द्वारा खर्च की गई राशि का 24 गुणा चुकाना पड़ता था। नगरों में नाट्य संस्थाएँ भी सक्रिय थीं। स्त्री एवं पुरुष दोनों कलाकार रंगोपजीवी तथा रंगोपजीवनी कहलाते थे।

मौर्यकालीन दास व्यवस्था

मेगस्थनीज का मानना था कि भारत में दास प्रथा प्रचलित नहीं थी, किन्तु बौद्ध ग्रन्थ में त्रिपिटक में चार प्रकार के दासों की चर्चा की गई है। दूसरी तरफ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नौ प्रकार के दासों की चर्चा की गई है। कौटिल्य ने अस्थायी दास को अहितकर कहा है। आर्य शूद्र को दास नहीं बनाया जा सकता था, जबकि म्लेच्छों की संतान को दास रूप में बेचना या खरीदना गलत नहीं था।

मौर्यकालीन व्यवस्था में दासों का महत्त्वपूर्ण योगदान था। त्रिपिटक की तुलना में कौटिल्य ने कहीं अधिक विस्तार से दासों का वर्गीकरण किया है। जहाँ त्रिपिटक में दासों के चार प्रकार बताए गए हैं, कौटिल्य ने नौ का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने दास प्रथा की कानूनी वैधता को स्वीकार किया था। बौद्ध ग्रंथों एवं कौटिल्य अर्थशास्त्र में उत्पत्ति एवं कार्यों के आधार पर किए गए दासों के वर्गीकरण से स्पष्ट है कि वे सम्पत्ति का एक रूप थे।

केन्द्रीय राजतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित मौर्य साम्राज्य की स्थापना से दास प्रथा में अन्य रूपांतरण भी हुए। राजनीतिक एकीकरण ने एक ऐसी प्रक्रिया को जन्म दिया, जो देश के आर्थिक एकीकरण तथा साम्राज्य के कोने कोने में व्यापार के विकास को न केवल बना रही थी अपितु प्रोत्साहित भी कर रही थी। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप नगरों का उदय हुआ और व्यापारियों का प्रभाव बढ़ा। सेठ भू स्वामी थे और कभी कभी तो सम्पूर्ण गाँव उनके अधीन होते थे। इन भूमियों पर उनके दास काम करते थे अथवा उन्हें किराए पर उठा लिया जाता था। यह काफी तर्कसंगत लगता है कि दास श्रम के द्वारा भूमि कर्षण का यह तरीका पर्याप्त सामान्य बात हो गयी थी। मौर्यों ने इसको समाप्त करने का प्रयास नहीं किया। कौटिल्य के विवरणों से यह भी स्पष्ट है कि राज्य की भूमि पर कृषि कार्य में, खादानों में, कारखानों में, सुरक्षा प्रबंधों में भी दासों एवं दासियों का प्रयोग किया जाता था।

गणिकाओं के प्रशिक्षण ओर उन्हें ललित कलाओं में निपुण बनाने में राज्य का जो व्यय होता था, उसके कारण वे गणिकाएँ पूर्ण रूप से राज्य के नियंत्रण में थी। उनकी आमदनी एवं सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार था। उनकी मुक्ति तभी सम्भव थी, जब कि उन पर किए खर्च का 24 गुना धन दिया जाए। इस प्रावधान की पूर्ति लगभग असम्भव ही थी। अतः वे गणिकाएँ दासी तुल्य ही थीं। हालाँकि उनको सभी प्रकार के कामों में नहीं लगाया जा सकता था। उच्च सामाजिक वर्ग की सेवा करने वाली गणिका के अतिरिक्त, राज्य के पास वेश्याओं का ऐसा समूह भी था जो बंधकीकृपोषकों के अधीन था और जिनके माध्यम से राज्य को काफी आय होती थी। घरों में भी दास अनेक कार्य करते थे।

दास प्रथा से सम्बन्धित कौटिल्य के विवरण का एक महत्त्वपूर्ण अंग आहितकों का वर्णन है। कौटिल्य ने आजीवन दासों एवं किसी काल विशेष के लिए समझौते द्वारा उत्पन्न दासों में अंतर रखा है। दास प्रथा पर आधारित अन्य पुरातन समाजों की भाँति भारत में भी दासों के व्यक्तित्व एवं उसके श्रम का निपटारा करने में स्वामी को असीमित अधिकार प्राप्त थे। एक दास के रूप में जो व्यक्ति किसी अन्य की सम्पत्ति था, वह सभ्य समाज का सदस्य नहीं हो सकता था। उपर्युक्त अभिधारणा तो पूर्ण दासों के लिए ही सही उतरती है, किन्तु दूसरी ओर ऐसे लोग थे, जो अस्थायी रूप से बंधक एवं आश्रित थे। इनको कौटिल्य ने 'आहितक' कहा है। ये लोग एक निश्चित काल के लिए ही सेवा करने के उत्तरदायी होते थे और यह अवधि बीत जाने के बाद एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के अधिकारी थे। कर्मकांडीय अशौच कृत्यों को करने के लिए उन पर कोई दबाव डालने पर प्रतिबंध था। उसे बेचा नहीं जा सकता था और न उसे धारक बनाया जा सकता था। स्वामी की इच्छा के बिना समय पर आने पर वह स्वतंत्र हो जाता था। अर्थशास्त्र के अनुसार सही अर्थों में तो केवल बर्बर, म्लेच्छा ही, जो वर्ण से बाहर थे, तथा अनार्य समाज के सदस्य स्थायी रूप से दास बनाए जा सकते थे। यह निर्धारित करना कठिन है कि इस नियम का पालन वास्तविकता में कितना होता था, किन्तु बंधक रखने की सीमाओं को सीमित करने के प्रयास तथा समुदाय में स्वतंत्र सदस्यों को दास रूप में परिणत करने की सम्भावनाओं को कम करना प्राचीन युग के अनेक समाजों की विशेषता है।

मौर्यकालीन धार्मिक व्यवस्था

धार्मिक दृष्टि से मौर्य काल में काफी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस दौरान बौद्ध धर्म का काफी विस्तार हुआ और उसे कई शासकों का संरक्षण भी प्राप्त हुआ। मौर्यकाल में वैदिक धर्म भी प्रचलित था। इस दौरान वैदिक धर्म में कर्मकांड काफी बढ़ गए थे। मौर्यकाल में यज्ञ इत्यादि कर्मकांड काफी प्रचलित थे। छठी सदी ईसा पूर्व तक भारत में धार्मिक सम्प्रदायों का प्रचलन था। ये सभी धर्म किसी न किसी रूप से वैदिक प्रथा से जुड़े थे। छठी सदी ईसापूर्व में कोई 62 सम्प्रदायों के अस्तित्व का पता चला है जिसमें बौद्ध तथा जैन सम्प्रदाय का उदय

कालान्तर में अन्य की अपेक्षा अधिक हुआ। मौर्यों के आते–आते बौद्ध तथा जैन सम्प्रदायों का विकास हो चुका था। उधर दक्षिण में शैव तथा वैष्णव सम्प्रदाय भी विकसित हो रहे थे।

मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में जैन धर्म को स्वीकार किया था। ऐसा कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त अपना राजसिंहासन त्यागकर अपने गुरु जैनमुनि भद्रबाहु के साथ कर्नाटक के श्रवणबेलगोला में सन्यासी के रूप में रहने लगा था। इसके बाद के शिलालेखों में भी ऐसा पाया जाता है कि चन्द्रगुप्त ने उसी स्थान पर एक सच्चे निष्ठावान जैन की तरह आमरण उपवास करके दम तोड़ा था। वहां पास में ही चन्द्रगिरि नाम की पहाड़ी है जिसका नामाकरण शायद चन्द्रगुप्त के नाम पर ही किया गया था। जबकि सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध के बाद बौद्ध धर्म को स्वीकार किया था। उसके बाद अशोक ने दक्षिण एशिया व अन्य क्षेत्रों में बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए काफी प्रयत्न किये। आरम्भ में अशोक वैदिक धर्म का अनुयायी था, कई अभिलेखों में उसे देवानामप्रिय कह कर संबोधित किया गया है। बौद्ध धर्म का अनुयायी होने पर भी अशोक सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु था।

कौटिल्य ने भारत के प्राचीन धर्म को ''त्रयी धर्म'' कहा है। इस काल में ऐसे धार्मिक सम्प्रदायों की सत्ता थी जो पुराने वैदिक या त्रयी धर्म से भिन्न थे। इस सम्प्रदायों के लिए कौटिल्य ने वृषल और पाखंड शब्दों का प्रयोग किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में शाक्य एवं आविजक परिव्राजकों का उल्लेख है, परन्तु बौद्ध साहित्य से सूचित होता है की अन्य भी बहुत से पाखंड मौर्य युग में मौजूद थे। वैदिक धर्म मौर्य युग में प्रधान था, परन्तु इसका स्वरूप बदल चूका था। प्राचीन वैदिक धर्म में मंदिर एवं मूर्ति पूजा के लिए कोई स्थान नहीं था। परन्तु इस युग में वैदिक धर्म में मूर्ति पूजा का महत्वपूर्ण स्थान हो गया। मूर्तियाँ मंदिरों में स्थापित होने लगीं। जिन विविध देवी–देवताओं की मूर्तियाँ मंदिरों में प्रतिस्थापित कौटिल्य ने उनके नाम भी दिए हैं। अर्थशास्त्र में लिखा है कि के में अपराजित, अप्रतिहत, जयन्त, वैजयन्त, शिव, वैश्रवण, अश्विन और मदिरागृह स्थापित जाते थे। संभवतः अपराजित, अप्रतिहत, जयंत और वैजयंत देवराज इंद्र के विविध नाम हैं। वैश्रवण कुबेर को कहते थे। अश्विन वैदिक देवताओं में एक था। 'श्री' लक्ष्मी का पयार्यवाची है। संभवतः मदिरा भी दुर्गा और काली की तरह एक देवी थी। ब्रह्म, इंद्र, यम और स्कद (सेनापति) की मूर्तियाँ बनवाकर नगर के चारों द्वारों पर स्थापित की जाती थीं। वरूण, नागराज और संकर्षण देवताओं का भी अर्थशास्त्र में उल्लेख है। पतंजलि का यह मानना है कि धन के लिए देवताओं की प्रतिमाओं को बनाकर बेचा जाता था। अशोक के काल में धार्मिक समूहों का निम्नलिखित विभाजन था– ब्राह्मण, श्रमण, बौद्ध आजीवक एवं अन्य। अशोक ने गया के पास बाराबर की पहाड़ी में कुछ गुफाएँ आजीवक संप्रदाय को प्रदान कीं। उसके पौत्र दशरथ ने नागार्जुनी पहाड़ी में कुछ गुफाएँ आजीवकों को दी। तृतीय बौद्ध संगीति–अधिवेशन के अन्त में धर्मप्रचार के लिए दूत भेजे गए।

अशोक का धम्म (धर्म)

अशोक ने कलिंग युद्ध के बाद बौद्ध धर्म को अपना लिया था। इसके बाद उसने धम्म के प्रचार में अपना ध्यान लगाया। यहां धम्म का मतलब कोई धर्म या मजहब या रिलीजन न होकर ''नैतिक सिद्धांत'' था। उस समय न तो इस्लाम का जन्म हुआ था और न ही ईसाइयत का। अतः वे नैतिक सिद्धांत उस समय बाहर के किसी धर्म का विरोध करना नहीं होकर मनुष्य को एक नैतिक नियम प्रदान करना था। अपने दूसरे शिलालेख में उसने लिखा है– ''धम्म क्या है? अल्प दुष्कर्म तथा अधिक सत्कर्म। रोष, निर्दयता, क्रोध, घमंड तथा ईर्ष्या जैसी बुराईयों से बचना तथा दया, उदारता, सच्चाई, संयम, सरलता, हृदय की पवित्रता नैतिकता में आसक्ति और आंतरिक तथा बाह्य पवित्रता आदि सदाचारों का पालन।''

अशोक के व्यक्तित्व, विचार और योगदान के विवेचन के प्रसंग में उसकी धम्म की परिकल्पना पर विचार करना आवश्यक है। अशोक वस्तुतः किस धर्म का अनुयायी था। इस प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद रहा है। अधिकांश विद्वान् उसे बौद्ध धर्म का अनुयायी मानते हैं। उनके अनुसार अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। दूसरी ओर कुछ विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि अशोक द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकार करने के लिए अपेक्षित प्रामाणिक साध्यों का अभाव है। जैसा कि सेनार्ट महोदय ने लिखा है– अशोक के धर्म में कोई ऐसी बात नहीं है जिसके आधार पर हम यह कह सके कि अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। इसी प्रकार कर्न महोदय ने लिखा है कि– अशोक के कुछ शिला–लेखों के अतिरिक्त उनमें कोई ऐसी बात नहीं मिलती है जो विशेषतया बौद्धों की हो।

अशोक के बौद्ध होने का एक अन्य प्रमाण यह है कि उसने मोग्गलि पुत्र तिष्य की अध्यक्षता में तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन किया था जिसका उद्देश्य महात्मा बुद्ध के उपदेशों के पाठों को शुद्ध करना था। बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ उसने बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों को देश–विदेश भेजा। उसने ब्राह्मण यज्ञों तथा अनुष्ठानों का निषेध किया। इन सब तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अशोक ने बौद्ध धर्म को अंगीकार कर लिया था। जैसा कि डॉ. हेमचन्द राय चौधरी ने लिखा है– इसमें सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं है कि अशोक बौद्ध बन गया था।

निष्कर्षतः चन्द्रगुप्त एक विशाल साम्राज्य का शासक था। अतएव शासन की सुविधा के लिए साम्राज्य कई भागों में विभक्त कर दिया गया था। प्रत्येक प्रांत कई आहारों तथा विषयों में विभक्त कर दिया गया था। चन्द्रगुप्त के समय में कितने प्रांत थे, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। सम्भवतः पांच–छः मुख्य प्रांत रहे होंगे। पहला प्रांत उत्तरापथ का था, इसकी राजधानी तक्षशिला थी। अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, सिन्ध, पंजाब और कश्मीर का शासन यहीं से होता था। दूसरा प्रांत अवन्तिरूप का था। इसकी राजधानी उज्जैनी थी। मालवा तथा गुजरात का शासन यहीं से होता था। तीसरा प्रांत दक्षिणपथ का था। इसकी राजधानी सुवर्णगिरि थी। चौथा प्रांत कलिंग का था, इसकी राजधानी तोषली थी। पाँचवां प्रांत प्राच्य कहलाता था, इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। चूंकि कलिंग पर अशोक ने विजय प्राप्त की थी, इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चन्द्रगुप्त के शासनकाल में चार ही प्रांत रहे होंगे। सुदूरस्थ प्रांतों वेफ प्रबन्ध के लिए राजकुमारों को नियुक्त किया गया था। प्राच्य तथा मध्य देश के प्रांतों का प्रबन्ध सम्राट् अपने महामंत्रियों की सहायता से स्वयं करता था। वे महामंत्री पाटलिपुत्र, कौशाम्बी आदि जैसे बड़े–बड़े नगरों में रहते थे। सुराष्ट्र का प्रबंध पुष्यगुप्त नामक एक वैश्य करता था। इन प्रांतों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी भू–भाग थे जिन्हें स्थानीय मामलों में पर्याप्त स्वतंत्राता थी। ऐसे क्षेत्रा अपने को मौर्य साम्राज्य के अधीन मानते थे और वार्षिक कर दिया करते थे।

संदर्भ :

1. अग्रवाल पृथ्वी कुमार : प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु, वाराणसी, 2002
2. अग्रवाल वासुदेव शरण : भारतीय कला, वाराणसी, 2004
3. उपाध्याय वासुदेव : प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मन्दिर पटना 1972 प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पटना, 1970

4. उपाध्याय भगवत शरण : भारतीय कला का इतिहास, नई दिल्ली, 1981
5. उपाध्याय डॉ. उदय नारायण व तिवारी गौतम : भारतीय स्थापत्य एवं कला, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001
6. श्रीवास्तव डॉ. ए. एल. : भारतीय कला–प्रतीक, इलाहाबाद, 1997 : भारतीय कला सम्पदा, उमेश प्रकाशन इलाहाबाद, 2001
7. गुप्त परमेश्वरी लाल : भारतीय वास्तुकला, वाराणसी, वि. 2003 : गुप्त साम्राज्य, वाराणसी, 1970
8. गुप्ता बी. एल. : मध्यकालीन भारत, जयपुर पब्लिशिंग हाऊस, बीकानेर, ईस्वी 1971
9. शोध पत्र, पत्रिकायें पृथ्वी कुमार अग्रवाल : मौर्यकला, राजबली पाण्डेय स्मृति ग्रन्थ, कला निधि प्रकाशन, देव रिया, 1976
10. शास्त्री के. ए. नीलकण्ठ : नन्द–मौर्य–युगीन भारत, दिल्ली, 1987 : द हिस्टी ऑफ साउथ इण्डिया, आक्सफोर्ड, 1966
11. सिंह डॉ. शरद (2011) प्राचीन भारत में स्त्रियों के प्रति समाज का दृष्टिकोण ।